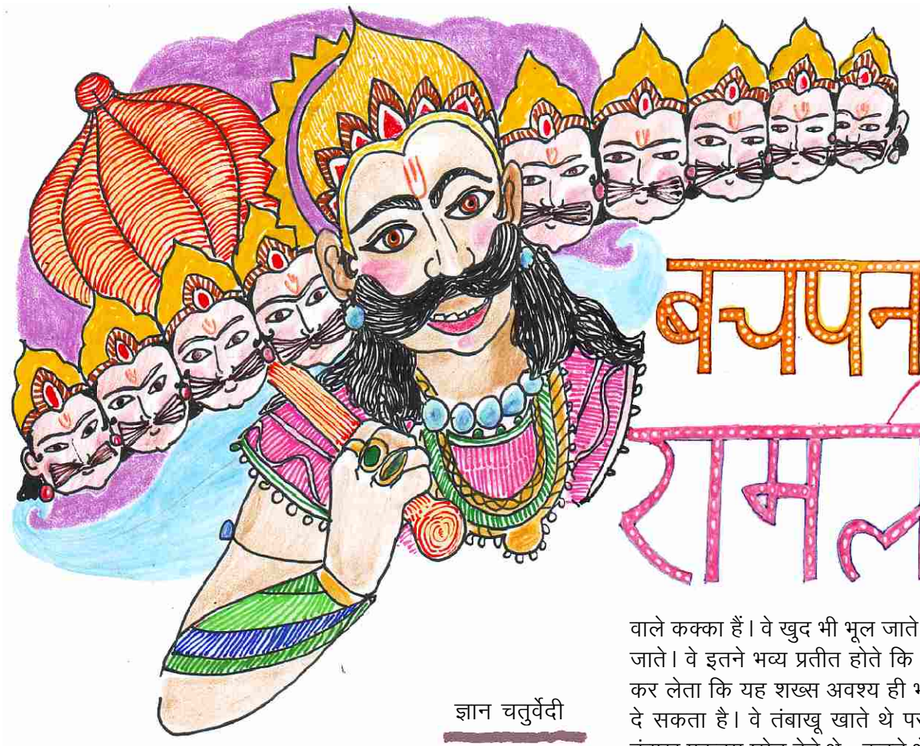

बचपन की रामलीला

ज्ञान चतुर्वेदी

बात पुरानी है।

मैं तब सातवीं-आठवीं में भाँडेर में पढ़ता था। वह एक छोटा-सा गाँव था। एक प्राथमिक पाठशाला, एक मिडिल स्कूल और एक हाईस्कूल। एक संस्कृत पाठशाला। छोटा-सा बाज़ार। छोटी-सी आबादी। दो आटा चक्कियाँ। एक छोटा-सा सरकारी अस्पताल। एक बड़ा-सा मैदान, जहाँ मेला भी लगता, दंगलों का आयोजन होता। हम लोग खेल भी करते और दशहरे-दीवाली का समय आता तो वहीं रामलीला खेली जाती।

हमें रामलीला का वर्षभर इन्तज़ार रहता। कहो तो पूरे गाँव को ही रहता। गाँव में एक माह पूर्व से ही एक किस्म की सनसनी-सी व्याप्त हो जाती थी कि रामलीला की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। रिहर्सल शुरू हो जाती। वही राम, वही सीता। वही रावण! वही उनमें संवाद। वही कहानी। वही स्थितियाँ। पर, हर साल रामलीला देखना मानो नया अनुभव होता। लगता कि नए राम से मिले। आनन्द आ जाता। उन नौ दिनों में पूरा गाँव रामलीला मय हो जाता। कल की रामलीला कैसी रही और आज कौन-सा प्रसंग दिखाया जाएगा। इस पर बातें करते हुए हमारा दिन निकलता।

रावण बनते थे आटा-चक्की वाले कक्का। कसरती बदन। छह फीट ऊँचे। नाक ऊँची। भौंहे घुँघराली। आवाज़ मोटी। वे मुकुट बाँधकर, चमकीली ड्रेस पहनकर, रावण दरबारसजाकर सिंहासन पर बैठते। उन्हें देख लोग भूल जाते कि वे पनचक्की वाले कक्का हैं। वे खुद भी भूल जाते और रावण के पात्र में रम जाते। वे इतने भव्य प्रतीत होते कि हमारा मन तुरन्त विश्वास कर लेता कि यह शख्स अवश्य ही भगवान राम को भी चुनौती दे सकता है। वे तंबाखू खाते थे परन्तु रामलीला के दिनों में तंबाखू एकदम छोड़ देते थे - कहते थे कि रामलीला तो राम की पूजा है भैया, पूजापाठ में पान-बीड़ी ठीक नहीं। रावण बनते थे परन्तु अपने वास्तविक जीवन में वह रामभक्त थे। जब स्टेज पर राम-रावण युद्ध होता तो अपनी लकड़ी की तलवार को ऐसी भाँजते कि क्या तो असली रावण असली तलवार को भाँजता रहा होगा। स्टेज़ पर वानर बने बच्चों की वे सचमुच में ठुकाई कर देते थे। यूँ भी लड़ाई के दृश्य करने के वे इस कदर शौकीन थे कि पर्दे के पीछे से बुधौलिया जी (जो रामलीला इंचार्ज होते थे) आवाज़ें देते रह जाते कि अब युद्ध का दृश्य खत्म करके आगे चलो। पर, वे नहीं सुनते थे। रावण बनते ही राजा का भाव उनमें आ जाता था। जो ड्रेस उतारने के बाद भी लम्बे समय बना रहता था। रामलीला के दिनों में और बाद के एकाध माह तक वे घर से अपनी आटा-चक्की तक भी छाती निकालकर राजसी चाल से ही जाते थे। चक्की की गादी पर ऐसे ठाठ से बैठते थे मानो सिंहासन पर बिराजे हों। वे उन दिनों ग्राहकों से भी उम्मीद करते थे कि चक्की को सोने की लंका मानें और उनसे उतने ही आदर से ही बातें करें जैसा लंका में छोटे मोटे राक्षसगण रावण से किया करते होंगे। वे उतने दिनों जब भी हँसते तो रावण की तरह ही ज़ोर-ज़ोर से ठहाका मारकर ही हँसते थे। वे इस कदर राजा भाव में खो जाते थे कि किसी की नहीं सुनते थे क्योंकि रावण जैसा राजा भला किसी की सुनता है क्या? एक बार तो परदे के पीछे से बुधौलिया जी द्वारा बार-बार युद्ध जल्दी समाप्त करने के इशारों से नाराज़ होकर आपने एक तीर बुधौलिया जी की दिशा में परदे की तरफ ही चला दिया था। जो गलत निशाने के कारण ठीक जगह पड़ा। बुधौलिया जी उसके बाद कई दिनों तक ढाल सामने लगाकर ही परदे के पीछे खड़े होते रहे।

लोग चक्की पर आते और तारीफ करते कि कल आपके और अंगद के बीच जो संवाद हुए वे गज़ब के थे। उनसे आग्रह करते कि वे संवाद आप एक बार और सुना दें तो गेहूँ पिसने में जो समय लगने वाला है वह पता भी नहीं चलेगा। चक्की की आवाज़ के बीच वे ऊँची आवाज़ में संवाद बोलकर बताते तो मज़ा आ जाता था।

राम मेरा मित्र राम मनोहर पाठक बनता था। सातवीं कक्षा का सलोना-सा बच्चा। सुरीला गला। दुबला-पतला तो नहीं था पर कोमल-सा सुन्दर। राम बन जाता तो ऐसा सुन्दर निकल आता कि फिर उतने सुन्दर राम मैंने जीवन भर कहीं किसी रामलीला, टीवी सीरियल या फिल्म में नहीं देखे। जब लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग में राम बनकर वह विलाप करता या धनुष यज्ञ प्रसंग में शिवजी का धनुष तोड़ता था या परसुराम-लक्ष्मण संवाद के दौरान हौले-हौले मुस्काराता खड़ा रहता था- तो लगता मानो साक्षात् राम ही उतर आए हो भांडेर में। गरीब घर का था राम मनोहर। रामलीला समिति राम बनने की एवज़ में उसकी स्कूल ड्रेस बनवाती, स्कूल की किताबें देती और शायद कुछ पैसे भी। पर, वह पैसे या ड्रेस के लिए राम नहीं बनता था। वह तो राम ही होता था उन दिनों। राम की आत्मा उतर आती थी उसमें। रामचरित मानस की चौपाइयाँ कण्ठस्थ थीं उसे। इतनी-सी उम्र में कैसे उसने राम के चरित्र का यूँ आत्मसात कर लिया था, मैं नहीं जानता। क्योंकि मैं स्वयं उन दिनों एक बच्चा था। और मुझमें तो तब इतनी तमीज़ भी नहीं थी कि रामकथा को इस तरह समझ सकूँ। कुछ वर्ष पहले मुझे पता चला था कि यही राम मनोहर पाठक कहीं इंजीनियर बन गए हैं। मैंने पता करने या मिलने की कोशिश नहीं की। मेरे मन में उसका राम का सलोना रूप कहीं बसा हुआ है- उसके टूटने का डर जो था। भरत बनता था बुधौलिया जी का बेटा। बुधौलिया जी बड़े आदमी थे। रामलीला समिति के अध्यक्ष। नगरपालिका के स्वामी।

पैसे वाले। स्कूल में उनके बेटे से मास्टर तक डरते थे उससे। पर, उसी को भरत बनकर स्टेज पर राम मनोहर पाठक के पाँव छूने पड़ते थे क्योंकि पाठक तब राम होता था। राधागोविंद को बड़ी अखरती। बच्चे उसकी हँसी करते कि तू पाठक के पाँव छूता है। तो, उसने यह शर्त रखी थी कि मैं स्टेज पर राम के पाँव तभी छुऊँगा जब वह परदे के पीछे आते ही उतनी बार मेरे भी पाँव छुए। पाठक गरीब लड़का था और उसे पीछे आकर राधागोविंद के पाँव छूने पड़ते थे। राम मनोहर पाठक कितना भी राम हो ले परन्तु वह जानता था कि राम मनोहर पाठक के रूप में वह बुधौलिया जी का ऋणि रहने वाला है। वैसे, राधागोविंद बचपन के उन बचपने वाले दिनों से निकलकर आज भांडेर में आदरणीय राजनीतिज्ञ हैं। और राम की कृपा से बेहद सफल भी हैं।

लक्ष्मण बनने वाला लड़का भी मेरे स्कूल से ही था। हम उसे बिल्ले कहते थे। वह राम मनोहर के साथ खड़ा होता तो एकदमलक्ष्मण ही लगता। भारी आवाज़ वाला। परशुराम-लक्ष्मण संवाद का दिन उसका दिन होता। लोग आगे के कई दिनों तक बिल्ले के संवादों को याद करते। अभी राधागोविंद ने ही तीन साल पहले बताया था कि बिल्ले जब कॉलेज में था तो दिमागी बुखार से उसके चारों हाथ-पाँव में लकवा हो गया था। और बाद में वह इसी से मर भी गया। परशुराम के सामने ऐसे ठसके और विश्वास से खड़े होकर उन्हें चुनौती देने वाले बिल्ले का अन्त यह होगा यह मैं आज तक नहीं सोच पाता हूँ।

सीता बनने वाले मुकंद पाण्डे, दशरथ बनने वाले अजुद्दी कक्का और कुम्भकरण, मेघनाथ आदि बनने वाले मित्रों की बात भी बतानी थी। पर, वह फिर कभी। अभी तो यह बताते हुए बात बन्द करूँगा कि तमाम नई टेकनॉलॉजी, फिल्में, टीवी आदि आने के बाद भी हमारे गाँव कस्बों की जनता के बीच रामलीला अभी भी उतनी ही लोकप्रिय है। और रहेगी भी।... पर, मेरे बचपन की रामलीला जैसी तो कोई रामलीला हो ही नहीं सकती। शायद सभी के बचपन की रामलीला जैसी रामलीला फिर उनके जीवन में कभी नहीं आती। यह बचपन का जादू है कि रामलीला का, नहीं बता सकता।

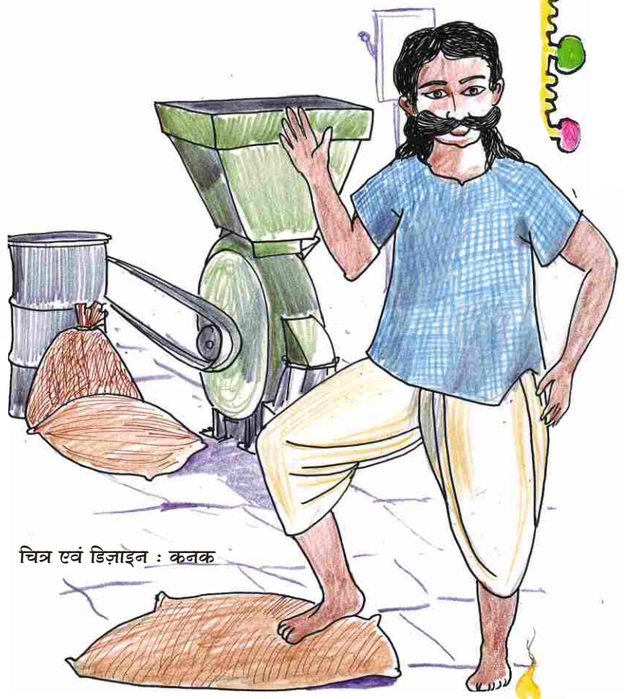

चित्र एवं डिज़ाइन : कनक